P. R. No.: DL(S)-17/3082/2009-11
Rgn. No.: DELHIN/2000/2473

SEVA-DHAM HOSPITAL
(YOGA, AYURVEDA, NATUROPATHY & PHYSIOTHERAPY)

Relax Your Body, Mind & Soul In A Spiritual Environment
Truly rejuvenating treatment packages through
Relaxing Traditional Kerala Ayurvedic Therapies

COMPLETE BODY WORKSHOP
SEVA-DHAM HOSPITAL

SEVA-DHAM HOSPITAL
K. H.-57, Ring Road, Behind Indian Oil Petrol Pump, Sarai Kale Khan,
New Delhi-110013. Ph. : +91-11-26320000, 26327911 Fax : +91-1126821348
Mobile 9999609878, 9811346904, Website : www.sevadham.info

प्रकाशक व मुद्रक : **श्री अरुण तिवारी**, मानव मंदिर मिशन ट्रष्ट (रजि.)
के.एच.–57 जैन आश्रम, रिंग रोड़, सराय काले खाँ, इंडियन ऑयल पेट्रोल पम्प के पीछे,
पो. बो.–3240, नई दिल्ली–110013, आई. जी. प्रिन्टर्स 104 (DSIDC) ओखला फेस–1
से मुद्रित।
संपादिका : श्रीमती निर्मला पुगलिया

कवर पेज सहित
36 पृष्ठ

मूल्य 5.00 रूपये
नवम्बर, 2011

रूपरेखा

जीवन मूल्यों की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका

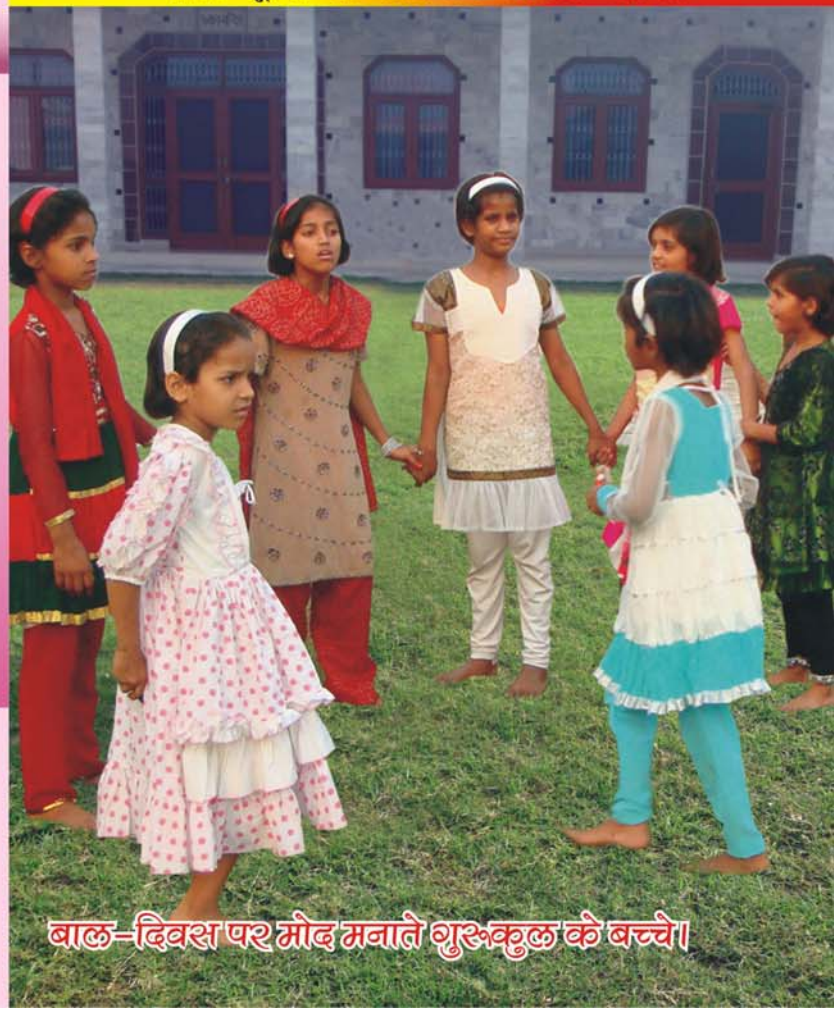

बाल–दिवस पर मोद मनाते गुरुकुल के बच्चे।

रूपरेखा

जीवन मूल्यों की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका

वर्ष : 11 अंक : 11 नवम्बर, 2011

: मार्गदर्शन :
पूज्या प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री जी

: संयोजना :
साध्वी वसुमती
साध्वी पद्मश्री

: परामर्शक :
श्रीमती मंजुबाई जैन

: सम्पादक :
श्रीमती निर्मला पुगलिया

: व्यवस्थापक :
श्री अरूण तिवारी

वार्षिक शुल्क : 60 रुपये
आजीवन शुल्क : 1100 रुपये

: प्रकाशक :

मानव मंदिर मिशन ट्रस्ट (रजि.)
पोस्ट बॉक्स नं. : 3240
सराय काले खाँ बस टर्मिनल के सामने, नई दिल्ली - 110013
फोन नं.: 26315530, 26821348
Website: www.manavmandir.com
E-mail: contact@manavmandir.com

इस अंक में

01.	आर्ष वाणी	5
02.	बोध कथा	5
03.	शाश्वत स्वर	6
04.	गुरूदेव की कलम से	7
05.	चिंतन-चिरंतन	16
06.	गीत	21
07.	गीतिका	22
08.	कहानी	23
09.	गजल	25
10.	सुनहरा फूल	26
11.	चुटकुले	28
12.	स्वास्थ्य	29
13.	बोलें-तारे	31
14.	समाचार दर्शन	33

रूपरेखा-संरक्षक गण

श्री वीरेन्द्र भाई भारती बेन कोठारी, ह्युष्टन, अमेरिका
डॉ. प्रवीण नीरज जैन, सेन् फ्रेंसिस्को
डॉ. अंजना आशुतोष रस्तोगी, टेक्सास
डॉ. कैलाश सुनीता सिंघवी, न्यूयार्क
श्री शैलेश उर्वशी पटेल, सिनसिनाटी
श्री प्रमोद वीणा जवेरी, सिनसिनाटी
श्री महेन्द्र सिंह सुनील कुमार डागा, बैंकाक
श्री सुरेश सुरेखा आबड़, शिकागो
श्री नरसिंहदास विजय कुमार बंसल, लुधियाना
श्री कालू राम जतन लाल बरड़िया, सरदार शहर
श्री अमरनाथ शकुन्तला देवी,
अहमदगढ़ वाले, बरेली
श्री कालूराम गुलाब चन्द बरड़िया, सूरत
श्री जयचन्द लाल चंपालाल सिंघी, सरदार शहर
श्री त्रिलोक चन्द नरपत सिंह दूगड़, लाडनूं
श्री भंवरलाल उम्मेद सिंह शैलेन्द्र सुराना, दिल्ली
श्रीमती कमला बाई धर्मपत्नी
स्व. श्री मांगेराम अग्रवाल, दिल्ली
श्री प्रेमचन्द ओमप्रकाश जैन उत्तमनगर, दिल्ली
श्रीमती मंगली देवी बुच्चा
धर्मपत्नी स्वर्गीय शुभकरण बुच्चा, सूरत
श्री पी.के. जैन, लॉर्ड महावीरा स्कूल, नोएडा
श्री द्वारका प्रसाद पतराम, राजली वाले, हिसार
श्री हरबंसलाल ललित मोहन मित्तल, मोगा, पंजाब
श्री पुरुषोत्तमदास बाबा गोयल, सुनाम, पंजाब
श्री विनोद कुमार सुपुत्र श्री बीरबल दास सिंगला,
श्री अशोक कुमार सुनीता चोरड़िया, जयपुर
श्री सुरेश कुमार विनय कुमार अग्रवाल, चंडीगढ़
श्री देवकिशन मून्दडा विराटनगर नेपाल
श्री दिनेश नवीन बंसल सुपुत्र
श्री सीता राम बंसल (सीसवालिया) पंचकूला
श्री हरीश अलका सिंगला लुधियाना पंजाब
डॉ. अशोक कृष्णा जैन, लॉस एंजिलिस
श्री केवल आशा जैन, टेम्पल, टेक्सास
श्री उदयचन्द राजीव डागा, ह्युष्टन
श्री हेमेन्द्र, दक्षा पटेल न्यूजर्सी
श्री प्रवीण लता मेहत्ता ह्युष्टन
श्री अमृत किरण नाहटा, कनाडा
श्री गिरीश सुधा मेहता, बोस्टन
श्री राधेश्याम सावित्री देवी हिसार
श्री मनसुख भाई तारावेन मेहता, राजकोट
श्रीमती एवं श्री ओमप्रकाश बंसल, मुक्सर
डॉ. एस. आर. कांकरिया, मुम्बई
श्री कमलसिंह-विमलसिंह बैद, लाडनूं
श्रीमती स्वराज एरन, सुनाम
श्रीमती चंपाबाई भंसाली, जोधपुर
श्रीमती कमलेश रानी गोयल, फरीदाबाद
श्री जगजोत प्रसाद जैन कागजी, दिल्ली
डॉ. एस.पी. जैन अलका जैन, नोएडा
श्री राजकुमार कांतारानी गर्ग, अहमदगढ़
श्री प्रेम चंद जिया लाल जैन, उत्तमनगर
श्री देवराज सरोजबाला, हिसार
श्री राजेन्द्र कुमार केडिया, हिसार
श्री धर्मचन्द रवीन्द्र जैन, फतेहाबाद
श्री रमेश उषा जैन, नोएडा
श्री दयाचंद शशि जैन, नोएडा
श्री प्रेमचन्द रामनिवास जैन, मुआने वाले
श्री संपतराय दसानी, कोलकाता
लाला लाजपत राय, जिन्दल, संगरूर
श्री आदीश कुमार जी जैन,
न्यू अशोक नगर, दिल्ली
मास्टर श्री बैजनाथ हरीप्रकाश जैन, हिसार
श्री केवल कृष्ण बंसल, पंचकूला
श्री सुरनेश कुमार सिंगला, सुनाम, पंजाब

आर्ष वाणी

यै समं क्रीड़िता, ये च भृशमीड़िता
यै सहा कृश्महि प्रीति वादं
तान् जनान् वीक्ष्य बत भष्मभूयं गतान्
निर्विशंकास्मइति धिग् प्रमादम्

-शान्त सुधारस

बचपन में जिन बच्चों के साथ खेले-कूदे थे। कुछ समझ आने के बाद जिन व्यक्तियों का पूजास्पद आदरणीय सम्मान किया। आज उन सब लागों की राख बनते हुए देखकर निश्चिन्त बने हुए हैं। धिक्कार है हमारे प्रमाद को।

बोध-कथा

जीवन की सार्थकता

एक बार महात्मा बुद्ध अपने शिष्य आनंद के साथ कहीं जा रहे थे। अचानक रास्ते में उन्हें बड़ी जोर की प्यास लगी। उन्होंने आनंद से कहा, 'वत्स! कहीं से थोड़ा जल लाकर दो ताकि मैं अपनी प्यास बुझा सकूं।' आनंद नदी तट पर पहुंचे। इतने में एक बैलगाड़ी वहां से गुजरी जिससे नदी का जल गंदा हो गया। वह लौट आए और बुद्ध से बोले, 'मैं जब तक जल लेता तब तक एक बैलगाड़ी के गुजरने से जल गंदला हो गया। मैं कहीं और से जल लाने का प्रयत्न करता हूं। लेकिन बुद्ध ने उन्हें फिर उसी नदी तट पर जाने को कहा। किंतु नदी का पानी तब भी साफ नहीं हुआ था। आनंद फिर लौट आए। बुद्ध ने फिर उन्हें वहीं भेजा। चौथी बार जब आनंद पहुंचे तो नदी का पानी शीशे की तरह चमक रहा था। गंदगी की नामोनिशान नहीं था। बुद्ध ने कहा, 'जीवन को भी विचारों की बैलगाड़ियां प्रतिदिन गंदा करती हैं और हम भागने लगते हैं। यदि भागने की बजाय नदी के स्वच्छ होने की प्रतीक्षा करें तो जीवन सार्थक हो जाएगा।'

एक बार एक व्यक्ति सूफी संत शेख फरीद के पास आया ओर उनसे सोने की एक थैली दान में लेने का अनुरोध करने लगा। लेकिन फरीद ने थैली लेने से इनकार कर दिया और कहा, 'मैं किसी गरीब का दान स्वीकार नहीं करता।' उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, 'महाराज, मैं गरीब कहां हूं। मैं तो इस इलाके का सबसे अमीर आदमी हूं। आप यह धन स्वीकार करें।' शेख फरीद मुस्करा कर बोले, 'ठीक है, तुम बड़े अमीर हो। मेरे एक सवाल का जवाब दो। इतना धन होने के बाद भी क्या तुम और धन नहीं चाहते?' वह व्यक्ति बोला, 'हां मेरे मन में और धन कमाने की इच्छा है।' संत ने कहा, 'सबसे बड़ा गरीब तो वही है, जो अपार धन होने के बावजूद और धन की कामना करे। अमीर वह है जो धन न होने के वाबजूद धन पाने की लालसा न पाले।'

शाश्वत स्वर

सत्य को समझने के लिए गहराई में जाना पड़ता है

प्रलय भी आता है उसके बाद सृष्टि का पुनः निर्माण होता है। कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में- हिमगिरि के उत्तंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँव। एक पुरूष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह। नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन, एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड या चेतन।

यह सृष्टि एक प्रकृति का विचित्र खेल है। कभी इस में भूकम्प आता है। कभी तूफान कभी बाढ़ और कभी बिजली भी गिर पड़ती हैं। किसी समय जमीन फट जाती है। युग बदलता है। इन्सान बदलता है। भाषा बदलती है कितने बदलाव आए हैं। लेकिन शाश्वत सत्य सदा एक सा रहता है।

चाहे कोई धर्म हो, चाहे कोई देश हो, कोई वेष हो, कोई संस्कृति हो, जो भूलभूत मानदंड हैं वे सदा अपना अस्तित्व कायम रखते हैं। जैसे पाश्चात्य और पूर्वीय संस्कृति में बहुत बड़ा फर्क है वहां के जीवन में पारिवारिकता नहीं है। चाहे जीवन में 60 वर्ष साथ रह लो। पर एक दूसरे के चले जाने के बाद कोई लगाव नहीं, कोई मोह नहीं। इसका एक दिल को तोड़ने वाला उदाहरण है। जिस समय श्री विवेकानन्द अमेरिका की यात्रा पर थे। उन्होंने वहां एक कब्रगाह पर एक अनोखा दृश्य देखा। वहां एक अंग्रेज अपनी पत्नी को हवा डाल रहा था। श्री विवेकानन्द ने उस व्यक्ति से पूछा कि एक कब्र पर हवा डालने का आपका क्या मकसद है। तब उसने साफ-साफ कहा यह मेरी पत्नी की कब्र है। उसने मुझे कहा था कि यह तो मैं जानती हूं कि मेरी मृत्यु के बाद आप दूसरी शादी करोगे। लेकिन मेरी संतुष्टि के लिए इतना अवश्य करना कि जब तक मेरी कब्र सूख न जाए, तब तक आप दूसरी शादी नहीं करोगे। तब मैंने हां भरली कि इतने मात्र से तुम्हें संतोष हो तो मैं स्वयं तेरी कब्र को हवा देकर सुखाऊंगा। किसी को सौपूंगा नहीं। इसलिए अपनी पत्नी की कब्र को सुखा रहा हूं। ताकि मैं जल्दी अपनी सहचरी ढूंढ़ सकूं।

आज तो पुराने ऋषि-मुनियों की तरह वैज्ञानिक भी इस बात में सहमत हैं कि क्षिति क्षण पावक गगन समीरा। दुनिया को संतुलित रखने के लिए प्रकृति को बहुत सुरक्षित अदूषित रखना होगा अन्यथा धरती का फटना बादलों का फटना ऐसी दुर्घनाएं समय-समय पर होती रहेगी

भगवान महावीर ने तो यहां तक कह दिया 'संतिएगेहिं भिक्खूहिं', गिहत्था संजमोत्तरा'। एक मुनि की बजाय एक-एक सावधान गृहस्थ का संयम सर्वोत्तम उत्कृष्ट होता है। गृहस्थों की अपेक्षा साधु तो उत्तम होते ही हैं। हमारे देश में धन, वैभव सत्ता और प्रभुता को ऊंचा नहीं माना। त्याग को ऊंचा बताया गया है। निःस्पृहता और अनासक्ति को स्थायी मूल्य दिया है। यह मूल्य सदा शाश्वत रहेगा।

-प्रस्तुति : निर्मला पुगलिया

बंधन भीतर है, बाहर नहीं

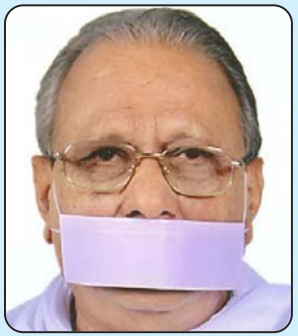

महात्मा जी उस नगर में पहली बार आए थे। शाम को घूमने के लिए निकल पड़े। नगर के बाहर एक विशाल मंदिर का निर्माण हो रहा था। स्वामीजी ने देखा, सैकड़ों मजदूर मंदिर-निर्माण में लगे हैं। एक सवाल स्वामीजी के मन में कौंधा। वे एक मजदूर के पास गये और बोले-भाई, क्या कर रहे हो? मजदूर पत्थर तोड़ रहा था। आवाज सुनकर उसने सिर ऊपर उठाया, देखा सामने एक स्वामीजी खड़े हैं। वह खीजता हुआ-सा बोला-क्या कर रहा हूं, मुझे पूछ रहे हैं, क्या आपको नहीं दिखता? भगवान ने आपको दो आंखें दी हैं। आप अन्धे तो नहीं। बिल्कुल साफ है कि पत्थर तोड़ रहा हूं, इसमें पूछने की बात ही क्या है? उसका पत्थर-तोड़ उत्तर सुनकर स्वामीजी मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये।

चालीस-पचास कदम पर फिर किसी मजदूर के पास पांव रोके। उससे भी फिर वही सवाल पूछा-भाई, क्या कर रहे हो? वह भी पत्थर तोड़ रहा था। उसने सवाल सुनकर स्वामी जी को माथा नमाया। फिर बुझे हुए स्वर में बोला-महाराज, पत्थर तोड़ रहा हूं, पेट पाल रहा हूं। अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए कहने लगा, परिवार में पांच प्राणी हैं। दिन-भर मजदूरी करने पर केवल पचास रूपये मिलते हैं। महंगाई का जमाना। एक कमानेवाला तथा पांच खाने वाले। आप ही सोचें, गाड़ी चले तो कैसे चले? पता नहीं, भगवान ने शरीर के साथ यह पेट क्यों बांध दिया, जो कभी भरता ही नहीं। सुबह भरो, शाम को खाली, शाम को भरो, सवेरे खाली। उम्र-भर भरते रहो, पर यह तो खाली-का-खाली। महाराज, बहुत मजबूर हूं। लगता है यह पेट नहीं है, कुदरत का अभिशाप है। जिसे हम गरीबों को उम्र-भर भोगना है। यह कहते-कहते उसकी आंखें डबडबा आई।

पहले मजदूर का उत्तर आक्रोश और खीज-भरा था, दूसरे का उत्तर था विवशता और मजबूरी से भरा हुआ। महात्माजी मन्द-मन्द कदमों से फिर आगे बढ़ गये।

थोड़े ही फासले पर एक और मजदूर से फिर वही सवाल पूछा-भाई, क्या कर रहे हो? मजदूर ने स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया। अत्यंत उल्लास और आनन्द के स्वरों

में बोला-महात्मा जी, लगता है मेरी इस ढलती उम्र में पुण्य-प्रभात का उदय हुआ है। मजदूरी तो उम्र-भर की। नेताओं के बंगले बनाये, सेठों की कोठियां बनाई, राजाओं के महल भी खडे किए। किन्तु इस बार मेरे आनन्द का कोई पार नहीं। मेरे जैसे अदने व्यक्ति के हाथों से भगवान का मंदिर बन रहा है। इससे अधिक पुण्य-घड़ी मेरे लिए और क्या होगी? यह कहते-कहते वह जैसे खुशियों से नाचने लगा। यद्यपि वह मजदूर भी पत्थरों को ही तोड़ रहा था।

स्वामीजी के मन में विचारों का मंथन चलने लगा। बाहर से तीनों मजदूरों की स्थिति एक समान है। तीनों ही पत्थर ही तोड़ रहे हैं। किन्तु भीतर से एक गुस्से और खीज भरा है, दूसरा विवशता और मजबूरी से भरा, तीसरा खुशियों और आनन्द से भरा है। बाहर से सारे एक ही भूमिका पर खड़े हैं। भीतर में एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत भूमिका पर खड़े हैं। किन्तु सवाल उन मजदूरों का नहीं, हमारा भी है। इस जीवन के रूप में हमें भी एक मंदिर मिला है बनाने के लिए। इस मंदिर को हमें खुद बनाना है। मंदिर के निर्माण के लिए हममें से किसी को पचास वर्ष का समय मिला है, किसी को साठ वर्ष का समय मिला है, किसी को सत्तर और अस्सी वर्ष का । इतने लम्बे समय तक हम मंदिर बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। चाहे हम इसे खीजे हुए मन से बनाएं, चाहे बुझे हुए मन से मनाएं चाहे मजबूरी में रोते-रोते बनाएं, चाहे आनन्द में नाचते-गाते बनाएं, जिसको भी जीवन मिला है, उसे इस मंदिर को बनाना है । उस मंदिर-निर्माण में बाहर से सबको एक-समान रूप से पत्थरों को ढोना है। बाहर से हम उन मजदूरों की तरह एक ही भूमिका पर खड़े हैं। अब टटोलना है अपने को भीतर से, कि हमारे में से कौन किस भूमिका पर खड़ा है। फर्क भीतर में ही आने वाला है, बाहर से नहीं।

कैसा है जीवन और जगत?

यह अन्तर हमारी अपनी दृष्टि से ही आएगा। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों, मनीषी-चिन्तकों ने इस जीवन और जगत की बड़ी-बड़ी व्याख्याएं दी हैं। किन्तु संक्षेप में जीवन और जगत को यदि समझना चाहें, तो कहा जा सकता है, यह जीवन वैसा ही है, जैसा हम इसे जीते हैं। यह जगत वैसा ही है जैसा हम इसे देखते हैं। या यों समझें कि वह हमारे लिए वैसा ही है औरों के लिए वह वैसा हो, यह जरूरी नहीं है। पत्थर ढोने का एक ही कार्य किसी के लिए रोष और खीज का कारण हो सकता है, किसी के लिए विवशता और मजबूरी का कारण हो सकता है, किसी के लिए आनन्द और उल्लास का । यह हमारे पर निर्भर है कि हम इसे किस रूप में लेते हैं। अगर हम जीवन और जगत को आनन्दमय देखते हैं,

सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द मिलेगा। हम जीवन और जगत को दुःखमय और यातनापूर्ण देखते हैं, हमको सर्वत्र दुःख-ही-दुःख, यातना-ही-यातना मिलेगी। प्रश्न यह नहीं है कि कैसा है जीवन और जगत? प्रश्न यह है कैसी है हमारी ग्रहण-दृष्टि। जैसी है हमारी ग्रहण-दृष्टि, यह सृष्टि भी हमारे लिए वैसी ही है।

जनक के राजदरवार में जब श्री राम शिव-धनुष को प्रत्यंचा पर चढ़ा रहे हैं, दरबार में उपस्थित जन-समूह श्री राम को उस समय अपने-अपने ढंग से देखता है। कोई उन्हें एक धीर-वीर युवा के रूप में देखता है, तो कोई उन्हें शिव-धनुष की ओर बढ़ते देखकर, उनका बचपना मानते हुए हंस रहा है। किन्तु मां सीता के हृदय में उनका ज्योर्तिमय भगवत्-स्वरूप ही अवतरित होता है। इन्हीं विविध दृष्टियों का आकलन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं-

जाकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

जिस-जिसकी, जैसी-जैसी भावना थी, उन्होंने वैसी-वैसी प्रभु की मूरत को देखा।

भगवान महावीर इसीलिए सबसे अधिक बल सम्यग्-दर्शन पर देते हैं। सम्यग्-दर्शन का सीधा-सा अर्थ है, हमारी दृष्टि सही हो। दृष्टि सही होने से ही ज्ञान सही हो सकेगा। जगत जैसा है, वैसा ही रहेगा। उसमें कोई फर्क नहीं आने वाला है। कैसा है यह जगत, इसका उत्तर जानने से पहले यह जान लें, कैसी है हमारी दृष्टि? यही स्थिति जीवन की है।

यह जिन्दगी
वैसे तो
बहुत ही खूबसूरत है,
पर इसको
जरा ठीक से
समझने की जरूरत है,
अगर नहीं समझे
तो है यह शैतान का मंदिर,
समझ गए
तो यही बस
भगवान की मूरत है,

यह जिन्दगी शैतान का मंदिर भी हो सकती है और भगवान का मंदिर भी। यह हमारे

पर है हम इसे किसका मंदिर बनाते हैं।

शैतान भी हमारे भीतर है। भगवान भी हमारे भीतर है। राम भी हमारे भीतर है, रावण भी हमारे भीतर हैं। महावीर भी हमारे भीतर हैं गोशालक भी हमारे भीतर हैं। कृष्ण भी हमारे भीतर हैं, कंस भी हमारे भीतर है। जीसस भी-हमारे भीतर है, जुड़ास भी हमारे भीतर है। जब भीतर का शैतान जागता है, रावण, कंस, गोशालक और जुड़ास जाग जाते हैं। जब भीतर का भगवान जागता है, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और जीसस जाग जाते हैं। किसे जगाना है, यह हमारी दृष्टि पर निर्भर है। हमारी दृष्टि शैतान पर है, शैतान जागेगा। हमारी नजर भगवान पर है, भगवान जागेगा।

अपनी दृष्टि को बदलना जरूरी

लगभग हमारी स्थिति यह है, हम अपने को बदलना नहीं चाहते। पड़ोसी को बदलना चाहते हैं, समाज को बदलना चाहते हैं, सरकार को बदलना चाहते हैं, किन्तु खुदको बदलना नहीं चाहते। जबकि यह भी साफ है कि हमारे चाहने से पड़ोसी नहीं बदलने वाला है, न समाज और व्यवस्था बदलने वाली है। चाहे कितना ही कोसते रहें हम पड़ोसी को, समाज को और सरकार को। उससे कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। अगर हम सचमुच में चाहतें हैं कि औरों में बदलाव आए तो उसका सीधा-सा उपाय है हम स्वयं बदल जाएं-

औरों को
बदलने के लिए
खुद को बदलना सीखें,
शंकर
बनना हो अगर,
विष-घूंट निगलना सीखें,
उजाले की परिभाषा
न मिलेगी
किताबों में तुम्हें,
उसे पाने के लिए
खुद
दीपक बन जलना सीखें,

यह एक सुनिश्चित मत है, हम बदलें, सब कुछ अपने आप बदल जाएगा। क्योकि हमारे बदलते ही हर चीज का संदर्भ बदल जाएगा। संदर्भ बदलते ही अर्थ बदल जाएगा।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में विवाद हो गया। एक कहता-तुमसे बड़ा मैं हूं। दूसरा कहता, तुमसे बड़ा मैं हूं। एक संन्यासी-दीक्षा में ज्येष्ट था तथा दूसरा ज्ञान में। विवाद का हल पाने के लिए दोनों स्वामीजी के पास पहुंचे। अपने-अपने तर्क रखे और स्वामीजी से निर्णय देने के लिए निवेदन किया। स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा-जो दूसरे को बड़ा माने, वह बड़ा। हम थोड़ा-सा ध्यान देंगे, स्वामीजी ने क्या कहा? स्वामीजी ने कहा- जो दूसरे को बड़ा माने, वह है बड़ा। अब तुम ही सोच लो, तुम्हारे में कौन बड़ा है। स्वामीजी का निर्णय दोनों ने सुना। अब दोनों एक दूसरे को बड़ा कहने लगे। जो दीक्षा में, संन्यास में ज्येष्ठ था। वह कहने लगा-माथा मुंडाने से क्या होता है। महत्त्वपूर्ण है ज्ञान। आपने मेरे से शास्त्र ज्यादा पढ़े हैं। आप शास्त्रज्ञ हैं। आप प्रभावशाली प्रवचनकार हैं। आप हैं मेरे से बड़े। दूसरा बोला-शास्त्र पाठ से क्या होता है। एक साधनाहीन व्यक्ति भी बड़े से बड़ा विद्वान हो सकता है, प्रखर वक्ता हो सकता है। पर उससे क्या? महत्त्व साधना का है। आप साधना में मेरे से ज्येष्ठ हैं, इसलिए आप बड़े हैं। इतनी देर दोनों 'मैं बड़ा हूं' के लिए झगड़ रहे थे, अब दोनों 'आप बड़े हैं' के लिए झगड़ने लगे। किन्तु दोनों झगड़ों में, दोनों विवादों में बड़ा अन्तर है। पहले विवाद में कटुता थी, दूसरे में मधुरता है। पहले में आग्रह था, अहम् था, दूसरे में विनम्रता है, मनुहार है।

यह कटुता मधुरता में कैसे बदली? दोनों वे के वे हैं। फिर 'मैं बड़ा' से 'आप बड़े' कैसे हो गये? दृष्टि बदली, घटनाओं का संदर्भ बदल गया। संदर्भ बदला कि अर्थ बदल गया। अर्थ बदला कि पूरा वातावरण बदल गया। पूरा जीवन बदल गया। जीवन बदला कि पूरा जगत बदल गया।

अपने भीतर है बन्धन और मोक्ष

भगवान महावीर कहते हैं- बन्ध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव -हे आत्मन्, बन्धन और मोक्ष तुम्हारे भीतर ही है। बन्धन कहीं बाहर नहीं है। मोक्ष भी कहीं बाहर नहीं है। बन्धन और मोक्ष, दोनों ही तुम्हारे भीतर हैं। हम सांसारिक वस्तुओं को बन्धन मान लेते हैं। कोई धन को बन्धन मानता है, कोई पत्नी को बन्धन मानता है, कोई संतान को बन्धन मानता है, कोई पद, यश, सम्मान को बन्धन मानता है, कोई वस्त्र को बन्धन मानता है, कोई शरीर को बन्धन मानता है । इस तरह हम किसी-न-किसी रूप में संसार को बन्धन माने हुए हैं। किन्तु वास्तव में संसार बन्धन है ही नहीं। यदि संसार ही बन्धन होता, तो फिर आज तक कोई उससे मुक्त हो ही नहीं पाता। क्योंकि जब तक हमें सदेह है, संसार सम्पूर्णतः छूट ही नहीं सकता। वह किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हुआ रहेगा ही। परिवार,

संतान, वस्त्र, धन, पद ये हम छोड़ भी दें, किन्तु शरीर तो साथ ही रहेगा। शरीर तो नहीं छोड़ा जा सकेगा। और शरीर है तो संसार है ही। फिर संसार को ही बन्धन मान लिया जाये, तो मुक्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

और न मोक्ष ही बाहर है। बाहर ही होता मोक्ष, तो धनवान व्यक्ति आज तक उसे खरीद लेते। जैसे आज चन्द्रमा की धरती पर प्लाट खरीदे जाने की चर्चा है। कहा जा रहा है कि बहुत जल्दी ही चांद की धरती पर आदमी बसेगा। योजनाएं बन रही हैं। आयोजनाएं हो रही हैं। नक्से बन रहे हैं। सारी व्यवस्थाएं जुटाई जा रही हैं कि आदमी को चन्द्रमा की धरती पर बसाया जाये। सुना है वहां बसने के इच्छुक, धनकुबेर व्यक्तियों के आवेदन भी अमरीकी सरकार के पास आने लगे हैं। अगर चांद की धरती पर नगर बसाना सम्भव होता है, तो केवल धनपति ही वहां पहुंच पायेंगे। गरीब व्यक्तियों का वहां पहुंचना सम्भव ही नहीं है। यह तो चन्द्रलोक की बात है। अगर मोक्ष, बैकुण्ठ-लोक बाहर मिलना शुरू हो जाये, तो कौन धनवान उस बैकुण्ठ-लोक में प्लाट खरीदना नहीं चाहेगा। क्योंकि मोक्ष के बारे में, बैकुण्ठ-लोक के बारे में जो धारणायें-अवधारणायें प्रचलित हैं। उनके अनुसार वहां अनन्त आनन्द सुख है, अनन्त समृद्धि है, अनन्त वैभव है। अपने ससीम धन-वैभव को दांव पर लगाकर उस असीम-अनन्त आनन्द समृद्धि को कौन नहीं पाना चाहेगा? किन्तु भगवान महावीर कहते हैं, वह मोक्ष बाहर नहीं तुम्हारे भीतर है। अनन्त सुख और वैभव का खजाना तुम्हारे भीतर ही है। भगवान कृष्ण कहते हैं- ईश्वरःसर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति -अर्जुन, ईश्वर का निवास-स्थान समस्त प्राणियों का हृदय-प्रदेश है। हृदय-प्रदेश से तात्पर्य उसी आत्म-जगत से है, जिस ओर भगवान महावीर इशारा कर रहे हैं।

बन्धन भीतर है, मोक्ष भी भीतर है। संसार भीतर है, ईश्वर भी भीतर है। इसलिए भीतर पर ध्यान देना है। भीतर में अगर संसार नहीं है, तो बाहर के संसार में ऐसा कुछ नहीं है, जो हमें बांध सके। भीतर में अगर संसार है, तो बाहर के संसार को, धन-परिवार-वस्त्र-पद आदि को छोड़कर भी हम मुक्त नहीं हो सकते। भीतर की पकड़ ही संसार है। हम उसी से बंधे हैं। और भीतर यदि बन्धन है तो बाहर फिर बन्धन-ही-बन्धन है। भीतर में अगर हमने ही अपने को पकड़ रखा है, तो बाहर पकड़ने वाले पग-पग पर मिल जायेंगे।

आपने सुना होगा, लोग बन्दरों को कैसे पकड़ते हैं। जिस जंगल में बन्दर ज्यादा होते हैं वहां मैदान में गड्ढे खोदकर उनमें मटके गाड़ दिये जाते हैं। उन मटकों का मुख इतना छोटा होता है कि अंगुलियों और हथेली को सिकोड़कर ही हाथ अन्दर डाला जा सकता है।

ऐसे संकरे मुखवाले तथा वड़े पेटवाले घडों को जमीन में पूरी तरह गाड़ दिया जाता है। सिर्फ ऊपर का मुंह खुला रहता है। उन घड़ों में थोड़े-थोड़े चने डाल देते हैं। चना बन्दरों का प्रिय भोजन होता है। आसपास किसी व्यक्ति को न देखकर वे उन घड़ों में चनों के लिए हाथ डालते हैं। चनों से मुट्ठियां भर लेते हैं। खाली हाथों को तो वे सिकोड़कर घड़े में डाल लेते हैं। किन्तु भरी हुई मुट्ठियां उन घड़ों में से नहीं निकल पाती। और बन्दर सोच बैठते हैं कि हाथ भीतर से किसी ने पकड़ लिया है। वे अपने हाथों को छुड़ाने की बड़ी कोशिश करते हैं, बड़ी उछल-कूद करते हैं, हाथ-पांव मारते हैं, चीखते-चिल्लाते हैं, किन्तु मुट्ठी नहीं छोड़ते हैं। इसलिए हाथ घड़े से बाहर नहीं निकाल पाते, हाथ बाहर इसलिए नहीं आ रहा है क्योंकि वे मुट्ठी नहीं छोड़ रहे हैं। पर वे यह समझ बैठते हैं किसी ने हाथ भीतर से पकड़ रखा है, इसलिए बाहर नहीं आ रहा है।

अब हम सोचें, किसने पकड़ रखा है उनके हाथों को भीतर से? कौन बैठा है भीतर हाथ पकड़ने वाला? पकड़ने वाला दूसरा कोई नहीं होता है। अपनी पकड़ ही पकड़े हुए है भीतर से । और जो अपनी पकड़ की पकड़ में आ जाता है, वह दूसरों की पकड़ में भी आ जाता है। बन्दर अपनी मुट्ठी की पकड़ नहीं छोड़ते, इसलिए दूसरों की पकड़ में आसानी से आ जाते हैं। जो अपनी मुट्ठी की पकड़ से छूट जाता है वह संसार की पकड़ से भी छूट जाता है। इसलिए भगवान महावीर कहते हैं -बन्धपमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव -बन्धन और मोक्ष तुम्हारे भीतर ही है।

संन्यास क्यों?

प्रश्न हो सकता है जब संसार बन्धन नहीं है, तो संन्यास क्यों लिया जाता है? क्यों संन्यास में स्त्री, सन्तान, परिवार, धन-वैभव तथा वस्त्रों तक को छोड़ा जाता है? यह सही है संन्यास में इन सबको छोड़ा जाता है। और यह भी सही है कि वस्तुतः ये बन्धन नहीं है। फिर भी इनको छोड़ा इसलिए जाता है कि ये बन्धन के कारण बन सकते हैं। बन्धन नहीं हैं ये बन्धन के कारण बन सकते हैं। कारण बनते ही हैं। ऐसा भी नहीं है। पर कारण बन सकते हैं, इसलिए इनको छोड़ा जाता है। वस्तुतः बन्धन के कारण अपने राग-द्वेष-मोह ही बन्धन के उपादान हैं। वस्तुएं तो बन्धन का मात्र निमित्त-कारण होती है। भीतर में उपादान-कारण न हो, तो बन्धन का कोई प्रश्न ही नहीं है। भीतर में उपादान हो, बाहर में कोई निमित न भी हो, तो भी हम बन्धन में आ जाते हैं। सीधे शब्दों में समझें, बाहर सुन्दर-से-सुन्दर रूप, कानों को प्रिय लगने वाले शब्द, आकर्षक गन्ध, सुस्वादु रस और कोमल गुदगुदे स्पर्श उपलब्ध होने पर भी, भीतर में इन्द्रिय-विषयों के प्रति अगर राग-द्वेष

तथा मोह नहीं है, तो कोई बन्धन नहीं है। बाहर ये इन्द्रिय-विषय नहीं भी हैं, किन्तु भीतर इनके लिए एक चाह है, एक लगाव है, एक आकर्षण है, तो बन्धन-ही-बन्धन है, चाहे उम्र-भर भी इन्द्रिय-विषयों का सेवन न हो। इंद्रिय विषय हैं बन्धन के निमित-कारण। तथा राग-द्वेष मोहात्मक विचार हैं बन्धन के उपादान-कारण। बन्धन का प्रमुख सम्बन्ध उपादान से है। निमित्त कारणों का परित्याग इसलिये और केवल इसीलिए किया जाता है कि उन निमित्तों से भीतर मे उपादान उद्दीप्त न हो। जब राग-द्वेष-मोह निर्बीज हो जाते हैं, फिर बाहरी जल का निमित्त मिल भी जाये, किन्तु उस बीज के उगने की कोई सम्भावना नहीं। बीज है तो जल मिलने से अंकुर फूटना सम्भव है ही। इसी दृष्टि से साधना में इन्द्रिय-बिषयों पर संयम का विधान मिलता है।

निमित्त-कारणों से एक हद तक बचा जा सकता है, पर सर्वथा बचना असम्भव है। यह कैसे सम्भव है आंख किसी रूप को देखे ही नहीं, कान किसी शब्द को सुने ही नहीं, नाक किसी गन्ध को सूंघे ही नहीं, जीभ किसी रस को चखे ही नहीं और शरीर किसी का स्पर्श करे ही नहीं। अगर इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों का ग्रहण करना ही बन्धन हो, फिर तो जिनके इन्द्रियां नहीं हैं, वे सबसे पहले मुक्त होने चाहिए। रूप को देखना तथा शब्द को सुनना ही बन्धन हो तो अन्धे और बहरे सबसे पहले मुक्त होने चाहिए। किन्तु बात ऐसी है नहीं। बल्कि इन इन्द्रियों का न मिलना अशुभ कर्म का उदय है तथा मिलना क्षयोपशम भाव है, शुभ का उदय है। इसलिए समझना यह है, न इन्द्रियां बन्धन की कारण हैं, न इन्द्रिय-विषय बन्धन के मूल कारण हैं, और न वस्तुएं बन्धन की उपादान हैं। बन्धन का मूल कारण है आत्मा के राग-द्वेष-मोहात्मक परिणाम। ये रागात्मक, द्वेषात्मक और मोहात्मक विचार भीतर हैं, तो बाहर से हम चाहे कुछ भी कर रहे हों, किन्तु भीतर में कर्म-बन्धन का उपार्जन कर रहे हैं, तो बाहर से चाहे हजार साधन बन्धन के उपस्थित हैं, फिर हमें कोई बन्धन में बांधने वाला नहीं है। अपने को बन्धन में डालने वाले भी हम हैं। अपने को मुक्त करने वाले भी हम हैं। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा है- बन्ध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव-आत्मन्, बन्धन और मोक्ष तुम्हारे भीतर ही है।

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

बन्धन और मोक्ष, स्वर्ग और नरक, सुख और दुःख सब कुछ हमारे भीतर हैं। इनमें से जिस किसी भूमिका पर हम भीतर में जी रहे हैं, हमें बाहर वही मिल जाएगा। सोचना यही है हम कैसा जीवन जी रहे हैं।

सोचें तो सही,
हम जीवन कैसा जीते हैं
कहीं ऐसा तो नहीं
कि ऐसा-वैसा जीते है
है यह हंसता फूल भी,
चुभता कांटा भी,
यह वैसा ही है,
हम इसे जैसा जीते है,
एक तो इसे
आप जीते है,
और एक हम जीते हैं,
हम तो
खुशियां जीते हैं
और आप गम जीते हैं,
क्या कारण है
जब मिला है एक-सा जीवन,
हम
इसे ज्यादा जीते हैं
और आप कम जीते हैं,

जीवन को ज्यादा जीने का अर्थ उम्र की लम्बाई से नहीं है, इसका अर्थ इतना ही है, जो क्षण, जो समय जीने को मिला है, उसे किस तरह जीते हैं। रोष और आक्रोश में जीते हैं, विवशता या मजबूरी में जीते हैं या उल्लास और आनन्द में जीते हैं। बाहर से तो जीवन-यापन के लिए किसी-न-किसी प्रकार की मजदूरी करना ही है। पत्थर तोड़ना या भार उठाना ही मजदूरी नहीं है, पेट-पालन के लिये जो भी किया जाये, वह मजदूरी ही है। वह मजदूरी हर किसी देहधारी को करना ही है। उससे छुटकारा सम्भव नहीं है। बाहर से किसी-न-किसी मजदूरी से जुड़ा होकर भी जो भीतर से राग-द्वेष से जुड़ा है, उसके लिए बन्धन ही बन्धन है, दुःख ही दुःख है, संसार ही संसार है। जो आनन्द, समता और वीतरागता से जुड़ा है, उसके लिये मुक्ति ही मुक्ति है, सुख-ही-सुख है, प्रभु ही प्रभु है। हम आनन्द और वीतरागता से जुड़कर भीतर में विराजमान परमात्मा को उपलब्ध हों, यही अपेक्षा है।

जैन धर्म : इतिहास-क्रम और स्वरूप

○ संघ प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री

धर्म का कभी इतिहास नहीं हो सकता, क्योंकि वह शाश्वत, सनातन और अनादि है। जब धर्म का अर्थ ही है वस्तु का स्वभाव, और स्वभाव कभी पैदा नहीं होता और न कभी विनष्ट ही होता, जो सदा है, सदा था, सदा रहेगा, और जो सब जगह एक जैसा होता है, उस सर्वदेशीय वस्तु स्वभाव की शुरुआत और अंत कोई कैसे कर सकता है। कालातीत और क्षेत्रातीत सत्य का कभी इतिहास बनता ही नहीं।

धर्म न किसी व्यक्ति से जुड़ा है, न किसी काल से प्रतिबद्ध है और न किसी नाम और विशेषण में बंधा है। धर्म तो सार्वभौम सत्ता है जो हर चेतना में विद्यमान है। फिर भी हम देख रहे हैं आज धर्म को कितना विकृत कर दिया गया है? उस पर कितने विशेषण लाद दिये गए हैं।

आज का धर्म धर्म न रहकर पंथ और संप्रदाय का पर्याय बन गया है अपने अपने धर्म प्रचेताओं को धर्म प्रवर्तक मानकर धर्मों को भी अलग-अलग संज्ञा दे दी गई और उन्हें काल की सीमाओं में बांध दिया गया।

यहीं से धर्म के नाम पर लड़ाई शुरू हो गई और विशुद्ध मानव धर्म ने अलग-अलग नामों के लवादे पहन लिए। जो धर्म एकता, अखण्डता, प्रेम और सद्भावना का पाठ पढ़ाने वाला था, वही धर्म आपसी मतभेद में उलझ गया। हर एक विचार धारा के समूह ने अपने-अपने धर्म के अलग-अलग रख लिए। जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सनातन धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, आर्य समाजी धर्म, सिक्ख धर्म इत्यादि। नाम करण के साथ ही अपने-2 धर्म को सर्वश्रेष्ठ और निखालिस बताकर दूसरे धर्मों को उसी की शाखा बताने में गौरव और संतुष्टि का अनुभव करने लगा। जबकि सब धर्मों की जड़ एक है। सभी धर्म प्रवेताओं का संदेश एक है और देश, काल व नाम के भेद से मौलिकता में कोई फर्क भी नहीं है। किसी धर्म की श्रेष्ठता उसकी प्राचीनता और विशालता से नहीं आंकी जा सकती। जो धर्म जितना जीवन्त और वैज्ञानिक होगा, मिथ्या परंपराओं, रूढियों, अन्य अन्ध विश्वासों और कट्टरताओं से से जितना परे होगा, वह धर्म उतना ही श्रेष्ठ और महान होगा।

विकार ग्रस्त आत्माओं को स्वभाव में लाने की प्रेरणा जिन महापुरुषों और जिन क्रिया-कलापों से मिलती है वे ही महापुरुष जनता के आराध्य देव और वे ही क्रिया कर्म धर्म की संज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी हैं। यद्यपि आराध्य पुरुष और धर्म के नाम बदलते रहते हैं लेकिन स्वरूप में कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रारंभ में पूरी मानवजाति का आराध्य पुरुष व धर्म एक ही था। कालान्तर में अनेक व्यक्ति और अनेक रास्ते जनता के बीच में खुल गए। लोगों के रुचि भेद और सामर्थ्यभेद के कारण किसी को किसी का मार्ग अच्छा लगा। किसी को किसी व्यक्ति पर श्रद्धा हो गई और वहीं से अलग-अलग परंपराओं का सूत्रपात होना शुरू हो गया।

इतिहास के साक्ष्यों से यह माना जाता है कि इस युग की आदि में भगवान ऋषभ देव ही मानव जाति के मार्ग दर्शक और प्रेरक थे। जैन और सनातन सभी ग्रंथों में इसके सबल प्रमाण मिलते हैं।

ऋगवेद जो कि भारतीय साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ है, उसमें ऋषभ को देव मानकर पूजा गया है तथा स्थान-स्थान पर अर्हत की पूजा की गई है। वह अर्हत ऋषभ ही होने चाहिए क्योंकि उस समय तक समस्त भारतीयों का आराध्य पुरूष एक ही था। अलग-अलग नहीं कुछ शोधकर्त्ताओं ने ऋषभ और शिव को एक ही व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

यजुर्वेद में ऋषभ की परंपरा के सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्व को आहुति दी गई है तथा आगे चलकर बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) की स्तुति की गई है। लगता है वेदकाल तक सभी भारतीयों की धर्म परंपरा एक और अविछिन्न रही है। उसके बाद भगवान ऋषभ को जैन परंपरा के साथ जोड़ दिया गया। भागवत पुराण में यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है, वहां ऋषभ का जैन के प्रवर्तक के रूप में उल्लेख हुआ है।

पांच हजार वर्ष पुराने मोहन-जोदड़ो की खुदाई में मिले सिक्कों पर जिनेश्वराय नमः तथा ऋषभ की मूर्ति का बैल के चिन्ह के साथ अंकित हुआ मिलना भी इस बात को पुष्ट करता है कि जो पहले समग्र मानव जाति के नेता के रूप में उभरे थे। वे कालान्तर में मात्र श्रमण संस्कृति के प्रतीक व जैन धर्म के प्रवर्तक बनकर रह गए। जो ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति शुरूआत में प्रवृति और निवृत्ति रूप धर्म को सम्मिलित रूप से प्रचारित करती थीं। समयान्तर में वे दो धाराओं के रूप में ग्राह्य बन गई। एक ही नदी से निकली दो धाराओं के बीच आगे चलकर बहुत बड़ा अलगाव व दुराव हो जाता है। वैसा ही कुछ जैन और सनातन परंपरा के साथ हुआ।

जैन और सनातन यह नामकरण तो बहुत बाद में हुआ। सबसे पहले ऋषभ के धर्म को अर्हत् धर्म कहा जाता था। उसके बाद अर्हत धर्म से श्रमण धर्म और ब्राह्मण धर्म ये दो परंपराए निकली जो एक निवृत्ति प्रधान थी और दूसरी प्रवृत्ति प्रधान। यही से जैन

और सनातन धम्र अलग-अलग हो गए। लेकिन नामकरण फिर भी जैन और सनातन नहीं हुआ था। श्रमण परंपरा निर्ग्रन्थ के रूप में मान्य हुई और ब्राह्मण परंपरा वैदिक धर्म के रूप में। आगे चलकर निर्ग्रन्थ धर्म ने जैन और वैदिक धर्म ने सनातन धर्म की नई अभिधा पाई।

अर्हद्, श्रमण, निर्ग्रन्थ, जैन आदि अनेक अभिधाओं में से गुजरते हुए भी जैन धर्म कभी व्यक्तिवाद और पंथवाद में नहीं उलझा। नामकरण भी गुणवत्ता का प्रतीक था। अर्हद् यानि सामर्थ्य शील आत्माओं का धर्म, श्रमण यानि श्रमशील व स्वावलम्बी जीवन जीने वालों का धर्म। निर्ग्रन्थ यानि राग-द्वेष की गांठ से मुक्त आत्माओं का धर्म। जैन यानी काम, क्रोध मद, मोह, लोभ रूपान्तर शत्रुओं के विजेताओं का धर्म।

योग वशिष्ठ में जिन शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में हुआ है। शुरू में जिन शब्दजिस शुद्ध आशय को लेकर प्रयुक्त हुआ था वही अर्थ यहां दर्शाया गया है।

यथा :- नाहं रामो न में वांछा, भावेषु न च मे मनः,
शान्ति मासितु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा।। -योग वशिष्ठ

वाल्मिकी रामायण में श्री दशरथ जी द्वारा श्रमणों का अतिथि सत्कार भी इस बात का सूचक है कि प्रचीन समय में सभी धर्म और सभी संतों की गुणवत्ता के आधार पर पूजा होती थी। आगे चलकर परंपराओं ने फिरका परस्ती का रूप ले लिया और गुणपरक नाम भी अपने गुणों को छोड़कर रूढ अर्थों में प्रयुक्त होने लगे। आज जैन शब्द एक धर्म विशेष या एक कौम विशेष के लिए प्रयुक्त होता है फिर चाहे जैन शब्द में निहित विजेता का भाव उसमें है या नहीं। जबकि प्रारम्भ में जैन शब्द न जाति विशेष में सीमित था न धर्म का वाचक था। और सच्चाई तो यह है कि जैन धर्म को स्वीकार करने वाले शुरू में क्षत्रिय और ब्राह्मण थे बनिया समाज तो बहुत बाद में जैन धर्मानुयायी बना है। जबकि आज जैन धर्म बनियों के धर्म के रूप में प्रसिद्ध है।

भगवान महावीर और उनसे पूर्व भगवान ऋषभ आदि तेईस तीर्थंकरों ने जिस सार्व भौम और व्यापक धर्म की प्रतिष्ठा की, वह किसी जाति, वर्ग विशेष के लिए नहीं, पूरी मानव जाति के लिए था।

भगवान महावीर की नजरों में न कोई बड़ा था न कोई छोटा, न कोई नीचा था न कोई महान्? उनका धर्म सब देशों में, सब कालों में, सब व्यक्तियों के लिए समान रूप से ग्राह्य था। पाप से लिप्त जो आत्माएं अपने जीवन को पवित्र, शुद्ध और स्वस्थ बनाना चाहती, उन सबके लिए भगवान महावीर का एक जैसा मार्ग-दर्शन था।

भगवान महावीर जैन परंपरा के चौबीसवें तीर्थंकर हैं। इससे पहले तेईस तीर्थंकर और हो चुके हैं। जिसमें पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव एक पौराणिक पुरुष के रूप में लोक

प्रसिद्ध हैं तथा बाईसवें तीर्थंकर हैं अरिष्टनेमि, श्री कृष्ण जिनके चचेरे भाई थे। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी इतिहास के आलोक में जा चुके हैं। बीच में बीस तीर्थंकरों का उल्लेख लोक इतिहास में कहीं नहीं है। जैन साहित्य में इनका संक्षिप्त इतिहास अवश्य उपलब्ध होता है या पुराण साहित्य में यंत्र-तंत्र इनकी चर्चा है।

भगवान ऋभष ने जहां लोग धर्म और लोकोत्तर धर्म दोनों का प्रतिपादन किया वहां भगवान महावीर ने लोक धर्म और लोकोतर धर्म में आई विकृतियों का निरसन किया।

भगवान महावीर के समय धर्म के नाम पर नरबलि व पशुबलि भयंकर रूप से प्रचलित थी। महावीर ने इन अमानवीय यज्ञों के विरूद्ध आवाज उठाई। अपने सुख के लिए निरपराध प्राणियों को होने जाने के स्थान पर विशुद्ध यज्ञ को परिभाषित किया। दास प्रथा के नाम पर गरीब और निरीह व्यक्तियों के साथ होने वाले शोषण और उत्पीड़न का उन्मूलन किया। जाति के आधार पर पनप रहे ऊंच-नीच के भेदभाव को चुनौती दी। जिसका साक्ष्य है, उन्होंने अपने धर्म संद्य में राजकुमार, ब्राह्मण पुत्र और श्रेष्ठि पुत्रों की तरह कुम्हार, जाट और हरिजन तक को दीक्षित किया।

भगवान महावीर का युग नारी जाति के अवमूल्यन का युग था। समानाधिकार की तो बात ही दूर स्त्रियों को पुरुष की सम्पत्ति समझा जाता था। अपनी सम्पत्ति का उपभाग कोई किसी तरह करे, कोई आपत्ति नहीं उठा सकता था। स्त्रियों को न शिक्षा दी जाती थी, न दीक्षा, नारियां पुरुष की दया की भीख पर जीती थीं। स्त्रियों का कार्य इतना ही था कि वह बच्चों का पालन पोषण करें, घर की सार-सम्भाल करें और पुरुषों की सेवा करें। इसके सिवाय अपने ऊपर हो रहे अन्याय के प्रति आवाज उठाने का भी उनको हक नहीं था।

उस विषमता के युग में भगवान महावीर ने स्त्रियों को सब क्षेत्रों में समान दर्जा दिया। यह उनके अदम्य साहस का प्रतीक है। भगवान महावीर के धर्म संघ की आचार संहिता में साधु और साध्वी में कोई भेद रखा नहीं है। पुरुष के बराबर स्त्री को भी मुक्ति का अधिकार देकर अपने संघ में चन्दनबाला आदि हजारों स्त्रियों को साधना के लिए दीक्षित किया। इतना ही नहीं जहां भगवान के संघ में साधु 14 हजार थे वहां साध्वियों की संख्या 36 हजार थी। स्त्री जाति को इतना बड़ा प्रोत्साहन देने वाले सहस्राब्दियों में विरले ही होते है।

भगवान महावीर की साधना में स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं था। शहर, जंगल, दिन-रात, अकेले या समूह का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। किसी भी वेश में, किसी भी देश में, किसी भी वर्ण का, किसी भी रंग का व्यक्ति साधना कर सकता है। यह था उनका उदार दृष्टि कोण। उन्होंने न नग्नता पर बल दिया, न वस्त्रों की अनिवार्यता बताई। उनका पूरा जोर चित्त की शुद्धि पर था। वे शरीर को कष्ट देने में भी धर्म नहीं मानते थे। पता नहीं, हजारों वर्षों से यह भ्रान्ति क्यों चलती आ रही है कि महावीर के मत में शरीर को

सताना या कष्ट देना ही धर्म है। भगवान महावीर का पूरा का पूरा दर्शन भीतर के रूपान्तरण पर आधारित है। बाहर के क्रिया काण्डों में वे उलझे ही नहीं। उन्होंने अपने अनुयायियों को चार वर्गों में बांटा- श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के लिए एक प्रकार की आचार संहिता बेशक अलग-अलग दी। लेकिन विचार पक्ष सबके लिए समान है। आचार संहिता अलग-अलग बनाने का उद्देश्य भी एक ही रहा कि सबकी क्षमता व मानसिक दृढता एक जैसी नहीं होती। अतः मजबूत मनोबल वाले व्यक्तियों के लिए महाव्रत दिए, जिनको स्वीकार करने वाले साधु साध्वी कहलाए। कमजोर दिल वाले लोगों के लिए अणुव्रतों की व्यवस्था दी, जिनको स्वीकार करने वाले श्रावक-श्राविका की श्रेणी में आए।

पांच महाव्रतों और पांच अणुव्रतों की भावभाषा में वैसे कोई अन्तर नहीं। सम्पूर्ण रूप से मनसा वाचा कर्मणा पालन किए जाए वे महाव्रत और उनका आंशिक पालन गणुव्रत।

1. अहिंसा अणुव्रत में निरपराध हत्याओं का निषेध।
2. सत्य अणुव्रत में झूठी गवाही तक का वर्जन।
3. अचौर्य अणुव्रत में मिलावट और कूट तोल माप का निषेध।
4. ब्रह्मचर्य अणुव्रत में अपनी पत्नी के सिवाय सम्पूर्ण नारी जाति को मां बहिन को पवित्र नजर से देखना।
5. अपरिग्रह अणुव्रत में सम्पत्ति का सीमाकरण और अनावश्यक संग्रह का निषेध।

पांच महाव्रत इस प्रकार हैं।

- अहिंसा - सर्वथा हिंसा का त्याग
- सत्य - सर्वथा झूठ का त्याग
- अस्तेय - सर्वथा चोरी का त्याग
- ब्रह्मचर्य - सर्वथा अब्रह्मचर्य का त्याग
- अपरिग्रह - सर्वथा परिग्रह का त्याग

इन पांच नियमों के अतिरिक्त रात्रि भोजन का परिहार भी आवश्यक माना जाता है जो हर दृष्टि से बड़ा उपयोगी और वैज्ञानिक है

मुनि के लिए महाव्रतों का पालन जरूरी है तथा गृहस्थ के लिए अणुव्रतों का विधान है। आज यदि भगवान महावीर के अणुव्रतों को जीवनगत कर लिया जाय तो सरकार और समाज को कोई कानून बनाने की जरूरत ही नहीं। आज के युग में जो समस्यायें हैं हत्या, डकैती, अपहरण, बलात्कार, कालाबाजार, तस्करी, मुनाफाखोरी आदि सारी बुराइयां स्वतः खत्म हो जाए। जो काम कानून नहीं कर सकता वह भीतर के संकल्प से संभव है।

-क्रमशः

गीत

-आचार्यश्री रूपचन्द्र

जीवन एक वीणा है इस पर गाना सीखो
यह मीठा झरना है अमृत पाना सीखो।।

इस वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ो
ना खींच खींच ज्यादा इन तारों को तोड़ो
संगीत मधुर इनमें तुम प्रकटाना सीखो।

इस बगिया में कांटे, गुल भी मुसकाते हैं
जो जैसा बोते हैं, वैसा वो पाते हैं
कर फूलों की खेती, तुम मुस्काना सीखो।

सूरज से सीखो तुम, हो ज्योतिर्मय जीवन
चन्दा से सीखो तुम, शीतल पावन तनमन
बादल ज्यों करूणा जल, तुम बरसाना सीखो।

जिसके मिल जाने पर, जग मिल जाए सारा
तेरे में "रूप" छिपा वह, प्रभुवर का प्यारा
भीतर की गंगा में, जीभर नहाना सीखो।

तर्ज-गीत अमर...

गीतिका

○ साध्वी मंजुश्री

भगवान मुझको मुक्ति का मार्ग दिखाना,
डगमग करती नैय्या को पार लगाना।

तू पारस है प्रभु लोहा मम जीवन, मुर्झा उपवन बरसो बन घन,
तू है देव मैं हूँ पूजारिन तूं है अमर धन, मैं हूँ अकिंचन,
अमृत की धार बहाना,2

तेरे नाम पर मर मिट जाऊँ, तेरे नाम का दीप जलाऊँ,
आत्म लक्ष्य को सफल बनाऊँ, विष को अमृत रूप बनाऊँ,
प्रभु भय की मार मिटाना।

स्वशक्ति पर बढ़ती जॉऊ, काम, क्रोध, को मूल मिटॉऊ,
मन मन्दिर में प्रभु को बिठाऊँ, मंजू प्रभु का गीत सुनाऊँ,
अमर ज्योति जलाना।

तर्ज- भैया मेरे राखी के बन्धन

कहानी

उपकार का ऋण

एक बार एक ऊंट अपने जंगल से भटककर एक रेगिस्तान में चला गया। रेगिस्तान की गरमी से उसका सिर भन्ना गया। प्यास से बेहाल हो गया। वह पानी के लिए मारा-मारा फिरने लगा। किन्तु कहीं भी पानी मिल नहीं रहा था। दूर से कोई चीज पानी की तरह नजर आती थी। ऊंट दौड़ते हुए बहुत दूर निकल जाता, लेकिन पानी नहीं मिलता था। उसे बहुत आश्चर्य होता, आखिर पानी उसके पास पहुंचने पर गायब कैसे हो जाता है। अंत में वह समझ गया कि यह उसका एक भ्रम है।

एक स्थान पर ऊंट अपने पैरों को मोड़कर बैठ गया। गला सूख गया था। प्यास बढ़ती जा रही थी। तभी उसने देखा एक महिला सिर पर मटका और कांधे पर रस्सी लेकर जल्दी-जल्दी जा रही थी। ऊंट को लगा- जरूर वह पानी के लिए जा रही है।

ऊंट उस महिला के पीछे-पीछे चल पड़ा। महिला एक गहरी बावड़ी के पास रुकी और रस्सी से अपने मटके के मुंह को बांधने लगी और बहुत देर तक रस्सी खींचने पर मटके में पानी भरा। ऊंट ने अपना सिर नीचे झुका लिया। महिला उस विचित्र जीव को देखकर डर गई और भागने को हुई पर रस्सी और मटके के मोह ने उसमें साहस भर दिया। ऊंट उसे बिल्कुल निरीह और पालतू लगा। उसको उस पर दया आ गई। उसने कहा- ''प्यासे लगते हो, पी लो, मैं और भर लूंगी।''

ऊंट एक सांस में सारा पानी पी गया। महिला ने फिर पानी खींचा। ऊंट के लिए एक मटका पानी ऊंट के मुंह में जीरा जैसा था। उसकी प्यास बुझी नहीं थी। उसने फिर सिर झुकाया। महिला ने फिर उसे पानी पीने की अनुमति दी। इस तरह कई खेप पानी ऊंट पी गया। ऊंट की प्यास बुझने का नाम नहीं ले रही थी। उधर महिला पानी खींच-खींच कर बेहाल हुई जा रही थी। ऊंट से उसकी हालत देखी नहीं गई और उसने फिर सिर नीचे नहीं किया।

महिला ने रस्सी समेटी, सिर पर मटका रखा और अपने रास्ते चल पड़ी।

महिला के उपकार का ऊंट पर बहुत गहरा असर पड़ा। इस उपकार का बदला चुकाने का उसने निश्चय कर लिया। वह फिर महिला के पीछे-पीछे जाने लगा।

रास्ते में महिला ने पीछे मुड़कर देखा। ऊंट उसके पीछे लगा था। उसने सिर से मटका उतारकर नीचे रख दिया। लेकिन ऊंट ने पानी नहीं पीया। वह तो अवसर की तलाश में था जब वह महिला के उपकार का बदला चुका सके।

महिला कहने लगी- 'अरे भाई, क्यों मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे हो। प्यास नहीं बुझी हो तो पानी पी लो और अपना रास्ता नापो।'

जवाब में ऊंट महिला के सामने अपने चारों पैर मोड़कर बैठ गया और अपनी पीठ पर बैठने के लिए इशारा करने लगा।

महिला उसके इशारे को समझ नहीं सकी। वह आगे बढ़ गई।

रास्ते में ऊंट फिर महिला का रास्ता रोक कर बैठ गया। अब महिला उसकी भावना समझ गई। कहने लगी- 'अरे नहीं, भाई। मैं पैदल ही चली जाऊंगी। तुम अपने जंगल लौट जाओ।'

बार-बार आग्रह करने पर महिला ऊंट पर बैठ गई। ऊंट को बहुत संतुष्टि मिली। वह महिला के गांव की ओर चल पड़ा।

महिला का घर आ गया। ऊंट बैठ गया। महिला उसकी पीठ से उतरकर अपने घर में घुस गई। ऊंट वहीं बैठा रहा।

ऊंट को इतने पर ही संतुष्टि नहीं मिली थी। पानी पिलाकर महिला ने उसकी जान बचाई थी। ऊंट को लगने लगा था कि महिला के उपकार का बदला वह अपनी जान देकर ही चुका सकता है। उसने महिला का पालतू बन जाने का निर्णय ले लिया।

तब से ऊंट रेगिस्तान में बस गया।

-प्रस्तुति : साध्वी पद्मश्री

गजल

ए खुदा, रेत के सहरा को समंदर कर दे,
या छलकती हुई आंखों को भी पत्थर कर दे।

तुझको देखा नहीं महसूस किया है मैंने
आ किसी दिन मेरे अहसास को पै कर दे।
या छलकती...

और कुछ भी मुझे दरकार नहीं है लेकिन
मेरी चादर मेरे पैरों के बराबर कर दे।
या छलकती ...

-शहीद मीर

गजल

कब तक यूँ बहारों में पतझड़ का चलन होगा
कलियों की चिता होगी, फूलों का हवन होगा।
हर धर्म की रामायण युग-युग से यह कहती है
सोने का हरिण लोगे, सीता का हरण होगा।
जब प्यार किसी दिल का पूजा में बदल जाये
हर साँस दुआ होगी, हर शब्द भजन होगा।
जीने की कला हमने सीखी है शहीदों से,
होंठों पे गजल होगी जब सिर पे कफन होगा।
इस रूप की बस्ती में क्या माल खरीदोगे?
पत्थर के हृदय होंगे, शीशे का बदन होगा।
यमुना के किनारे पर हर दीप जो जलता है
वह और नहीं कुछ भी राधा का नयन होगा।
संकट के अंधेरों में तुम आस नहीं छोड़ो
हर रात की मुट्ठी में सूरज का रतन होगा।
मजदूर के माथे का कहता है पसीना भी,
महलों में प्रलय होगी, कुटिया में जशन होगा।
अब देश की लक्ष्मी को लूटेगा कोई कैसे?
जब शत्रु की छाती पर अंगद का चरण होगा।
विज्ञान के भक्तों को अब कौन यह समझाये?
वरदानों से अपने ही दशरथ का मरण होगा।
इन्सान की सूरत में जब भेड़िये फिरते हों
तब 'हंस' कहो कैसे दुनिया में अमन होगा?

-उदयभानु (हंस)

पद्म पुराण

सुनहरा फूल

पूरी निष्ठा से किसी कार्य को किया जाए, तो ईश्वर भी मदद करते हैं। इन्सान ठान ले तो हर काम संभव है।

विजयपुरी के राजा की एक ही बेटी थी। उसका नाम था विजय कुमारी। इकलौती संतान थी, इसलिए राजा के लिए वही सब कुछ थी। राजा विजय कुमारी से बहुत लाड़-प्यार करते थे। उन्होंने उसे सभी विद्याएं सिखाई। वह विदुषी हो गई। धनुष-बाण भी चला सकती थी। घुड़दौड़ कर सकती थी और शिकार भी खेलती थी।

एक दिन विजय कुमारी शिकार खेलने गई। साथ में कई सखियां थीं। सभी के पास धनुष-बाण थे। मगर शिकार के चक्कर में एक-एक करके सारी सखियां बिछुड़ गई। विजय कुमारी अकेली रह गई शिकार की तलाश में बहुत दूर चली गई। घनघोर जंगल में पहुंच गई। थक गई, तो एक पेड़ की छांव में जा लेटी। कुछ ही देर में वह गहरी नींद में सो गई।

तभी एक बाघ उधर आ निकला। उसकी नजर विजय कुमारी पर पड़ी। वह गरजने लगा। आवाज सुनते ही विजय कुमारी जाग उठी। उसने भी बाघ को ललकारा। बाघ के साथ हिम्मन से लड़ने लगी। पर कब तक लड़ती! उसकी हिम्मत टूट रही थी। उसे लग रहा था कि उसकी मौत नजदीक है। इतने में एक चमत्कार हुआ। कहीं से तीन जहरीले तीर सनसनाते हुए आए। वे बाघ के पैर में लगे। तीरों के लगते ही बाघ घायल होकर बेहोश हो गया।

विजय कुमारी ने पीछे मुड़कर देखा। एक युवक खड़ा था। उसकी वेशभूषा साधारण थी। परंतु उसके चेहरे पर चमक थी। विजय कुमारी ने उससे पूछा- 'आप कौन हैं? आपने मेरी जान बचाई। आपको क्या इनाम दूं? मैं विजयपुरी की राजकुमारी हूं।'

युवक ने कहा- 'मैंने ऐसा कौन सा काम किया है! जो कुछ किया, वह तो मेरा कर्तव्य था। फिर भी आप मेरी एक मदद कीजिए। अपने पिता जी से कहकर मुझे नौकरी दिला दें। बगैर काम के मारा-मारा फिर रहा हूं।'

युवक के साथ विजय कुमारी लौट आई। राजा से कहकर उस युवक को नौकरी दिलवा दी। कुछ साल बीत गए। इसी बीच उस युवक ने अपनी कर्मठती और कौशल से

सभी का मन जीत लिया। राजा उसे कठिन से कठिन काम सौंपता। हंसते-हंसते वह युवक सारे काम पूरे कर देता। राजा अकसर रानी से उसकी प्रशंसा करता। विजय कुमारी भी सुनती। खुश हो जाती। उसके भी प्राण उस युवक ने बचाए थे।

एक दिन उस युवक को राजा ने किसी काम से राजमहल में भेजा। वहां उसकी भेंट विजय कुमारी से हुई। विजय कुमारी ने देखा कि वह युवक पहले से काफी बदल चुका है। अब वह सचमुच राजकुमार लगता है।

विजय कुमारी ने उससे बातों ही बातों में विवाह की इच्छा प्रकट की। युवक भी यह चाहता था, किन्तु राजा का भय था। युवक ने कहा- 'मैं तुम्हारे पिता जी से पूछकर तुमसे विवाह करूंगा।'

युवक ने राजा से विवाह के बारे में बात की। सुनकर क्रोध से राजा का चेहरा लाल हो गया। पर अपनी इकलौती संतान को दुखी कैसे करता? वह जानता था कि विजय कुमारी उससे शादी करना चाहती है।

राजा को बात माननी पड़ी। पर उसने एक शर्त रखी। उसने युवक से कहा- 'हमारे नगर में एक बगीचा है। उसमें तरह-तरह के फूलों के पौधे और पेड़ हैं। कई रंग के फूल हैं। लाल, पीले, गुलाबी, सफेद, नीले। परंतु सोने के रंग के फूल नहीं हैं। उस तरह के फूलों का पौधा लाकर लगाओ। जिस दिन उस पर फूल खिलेंगे, उसी दिन मैं तुम्हारा विवाह अपनी बेटी के साथ कर दुंगा।'

युवक ने शर्त मंजूर कर ली। उसने कहा- 'एक साल के अंदर-अंदर मैं ऐसा पौधा ला दूंगा।'

वह पौधे की खोज में चल दिया। उसके पास और कोई साधन नहीं था। केवल अपने साहस पर भरोसा था। उसने पूरा जंगल छान मारा, पर कहीं सोने के फूल वाला पेड़ दिखाई नहीं दिया। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। वह चलता रहा। आगे बढ़ता रहा।

एक जगह उसे एक मंदिर दिखाई पड़ा। उसे लगा, जैसे साक्षात देवता मिल गए। उसके आनंद की सीमा नहीं थी। उसने श्रद्धा से शिवलिंग की पूजा शुरू की। माथा टेका। फिर उत्साह के साथ पौधे की खोज में चल पड़ा।

वह एक पहाड़ की ओर जा रहा था। दूर से पहाड़ सोने की तरह चमक रहा था। लगता था कि उस पहाड़ से सोने की नदी बह रही है। वह पहाड़ के नजदीक पहुंचा। असल में वह रंग वहीं की मिट्टी का था। उसे बड़ी निराशा हुई।

वह मुड़कर वापस आने लगा। तभी उसे एक उपाय सूझा। वह जंगल से सफेद कनेर का एक पौधा ले आया। उसे धरती में गाड़ दिया। रोज देवता की पूजा करके उस

पौधे को सींचने लगा। समय के साथ पौधा बड़ा होने लगा। उसमें कलियां फूट आईं। फिर कलियों के फूल खिले। फूल सोने के रंग के थे। युवक की खुशी का ठिकाना न था। उस पौधे को मिट्टी समेत उखाड़कर, वह राजा के पास ले आया।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने वादे के अनुसार राजा ने विवाह का मुहूर्त निश्चित किया। निमंत्रण पाकर कई पड़ोसी राजा विवाह में शामिल हुए। उनमें से एक राजा ने उस युवक को देखा और दौड़कर उसे गले से लगा लिया। सभी आश्चर्य से यह दृश्य देखने लगे। उसने कहा- 'राजन् यह मेरा इकलौता बेटा है। इसका नाम देवराज है। मेरे साथ शिकार खेलते-खेलते यह जंगल में गुम हो गया था। लाख खोजने पर भी नहीं मिला। मैं कितना भाग्यवान हूं कि मुझे अपना खोया बेटा मिल गया।'

विवाह के बाद देवराज ने उस कनेर के पौधे की बड़ी देखभाल की। उसके फूलों से रोज देवता की पूजा करता था। शिवलिंग पर फूल चढाता था। देवराज का लाया गया वह पौधा 'देव कनेर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'देव कनेर' आज भी शिव पूजा के लिए अत्यंत पवित्र माना जाता है।

-प्रस्तुति : साध्वी बसुमती

चुटकुले

1. जज मुलजिम से : तुम्हें शर्म आनी चाहिए तीन साल भी तुम पहले कोट-पैंट चुराने के केस में इस कोर्ट में आ चुके हो।

मुलजिम : जज साहब एक सूट तीन साल से ज्यादा चलता कहां है।

2. एक दिन जंगल में चूहा बहुत तेजी से भागा जा रहा था। हाथी ने उसे टोका।

चूहा : किसी ने शेर की बहन को छेड़ दिया था और लोग मेरा नाम लगा रहे हैं।

3. डॉक्टर : आपके तीन दांत कैसे टूट गए?

प्रवीण : जी वो पत्नी ने कड़क रोटी बनाई थी।

डॉक्टर : तो खाने से मना कर देते।

प्रवीण : जी वही तो किया था।

4. एक कम्पनी के मैनेजर ने बड़ी इज्जत के साथ एक कर्मचारी से कहा : माफ करना सुरेश, मैं तुम्हें सोते से कतई न जगाता, अगर यह बात बेहद जरूरी न होती। तुम्हें नौकरी से बर्खास्त किया जाता है।

अभ्यास से दूर हो सकती है हकलाहट

हकलाहट मुंह में नहीं, दिमाग से होती है, यह कहना है डॉ. बी.एस. यादव का, जो स्पीच थेरेपी के माध्यम से हकलाहट का इलाज करते हैं। उनका कहना है कि बचपन में श्वास क्रिया की कमजोरी से हकलाहट प्रारंभ हो जाती है, धीरे-धीरे यह इतनी बढ़ जाती है कि व्यक्ति एक-एक शब्द बोलने के लिये लाचार हो जाता है। श्वास क्रिया की कमजोरी से बोलने की स्पीड बढ़ जाती है, स्पीड बढ़ने से बच्चा लटकने लगता है। नियमित रूप से अटकने से उसका ठीक बोलने का आत्मविश्वास खत्म हो जाता है।

हकलाहट खत्म करने के लिए अभी तक कोई दवा नहीं बनी है, यह मात्र अभ्यास से दूर हो सकती है। डॉ. यादव इसी अभ्यास के द्वारा हकलाने वाले व्यक्ति में एक नया आत्मविश्वास भर देते हैं। वे आमेर (जयपुर) में 'इंडिया स्पीच थेरेपी सेंटर' चलते हैं।

पता नहीं कितने युवक-युवतियों के जीवन में वह अब तक नयी आशा भर चुके हैं। हकलाहट मनुष्य की प्रगति में बाधक होती है। नौकरी, पदोन्नति तथा विवाद में हकलाहट बाधा बन जाती है। डॉ. यादव ने अब तक बहुतों को निराशा के गर्त से निकाला है। कईयों को आत्महत्या से बचाया है तथा कइयों को नौकरी व पदोन्नति प्राप्त करने में सहायता की है।

वाणी को मनुष्य का आभूषण कहा गया है। मन की अभिव्यक्ति के लिए वाणी ही सबसे सरल और प्रभावी माध्यम है। अगर उच्चारण दोषपूर्ण हो, तो निश्चित रूप से व्यक्ति कुंठित हो जाता है। वह समाज के बीच उठने-बैठने से कतराने लगता है। वह अपने को उपेक्षित समझता है।

भारत में इस रोग के उपचार की स्थिति कोई बहुत आशाजनक नहीं है। यहां के बड़े-बड़े अस्पतालों में इस रोग के इलाज के लिये कोई अलग से विभाग नहीं है। अस्पतालों के नाक, कान, गला विशेषज्ञ इसे दूर करने की कोशिश अवश्य करते हैं लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिलती।

डॉ. यादव से मुलाकात होने पर वह बतलाते हैं कि वह भी बचपन से हकलाहट के शिकार रहे हैं। इस कारण उन्हें लोगों की बहुते उपेक्षा सहनी पड़ी। इसके इलाज के लिये मां-बाप ने देवी-देवताओं से लेकर अस्पतालों तक के चक्कर लगाये लेकिन उनकी हकलाहट दूर नहीं हुई।

बाद में अपने एक अध्यापक की सलाह पर उन्होंने अकेले में बोलना शुरू किया।

धीरे-धीरे उन्हें इसमें सफलता मिलने लगी। उनकी समझ में जल्दी आ गया कि हकलाहट मुंह में नहीं बल्कि दिमाग में होती है। चार-पांच साल में उन्होंने हकलाने पर पूरा काबू पा लिया, आज स्थिति यह है कि वह फर्राटेदार बोलते हैं।

हकलाने के बारे में बतलाते हुए डॉ. यादव कहते हैं कि बचपन में श्वास क्रिया की कमजोरी की वजह से हकलाहट शुरू हो जाती है। विडम्बना यह है कि उसकी इस कमी को उसके माता-पिता व आसपड़ोस के लोग मनोरंजन का साधन समझते हैं। उसे बार-बार वह उसी तरह बुलवाते हैं। कभी-कभी किसी लंबी बीमारी, टायफायड या किसी अन्य बड़ी बीमारी से बच्चे में शारीरिक कमजोरी आने से श्वास क्रिया छोटी हो जाती है तथा श्वास रुक-रुककर आने से बच्चा अटक-अटककर बोलने लगता है।

इस तरह छोटी उम्र से नियमित रूप से अटक-अटक कर बोलने से आपका विश्वास टूट जाता है और कठिन अक्षर आपके दिमाग में जमा होते जाते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ आप और भी ठीक बोलना चाहते हैं। लेकिन कठिन अक्षरों से आपको रुकना पड़ता है तथा उनको बोलने के लिये संघर्ष करना पड़ता है। कठिन अक्षरों से दुश्मनी ही वास्तव में 'हकलाना' है। जैसे-जैसे व्यक्ति की उम्र बढ़ती जाती है, उसकी हकलाहट बढ़ती जाती है।

डॉ. यादव के पास आने वालों में अधिकतर 12 वर्ष से लेकर 30-35 वर्ष तक के ही लड़के-लड़कियां आते हैं। इस तरह का इलाज चाहने वालों का वह एक महीने तक मनोवैज्ञानिक तरीक से इलाज करते हैं। उनके पास जयपुर, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र आदि तक के रोगियों की भीड़ लगी रहती है, लेकिन वह एक बैच में 30 से अधिक रोगियों को नहीं लेते।

शुरू में वह कुछ लिटरेचर लंबी आवाज में उन्हें पढ़ने के लिये देते हैं। बाद में श्वास लेना आदि सिखाते हैं। इसके बाद दो-तीन दिन के लिये मौनव्रत रखाकर 'सेंटर स्पीच' सिखाते हैं। इलाज के दौरान रोगियों को कहानी सुनाना, श्वास लंबा करना, आपस में बातचीत के अवसर देना आदि भी शामिल है।

इसके अलावा डॉ. यादव रोज शाम को पांच बजे के बाद सभी को नगर भ्रमण के लिये ले जाते हैं। वहां बाजार में अजनबी लोगों से भी उनकी बातचीत करवाते हैं। जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। छात्रों की हीन भावना मिटाने के लिए उनमें ऐसे भाव भरे जाते हैं कि वह अपने को किसी से छोटा न समझे।

-प्रस्तुति : अरूण तिवारी

मासिक राशि भविष्यफल-नवम्बर 2011

○ डॉ.एन.पी मित्तल, पलवल

मेष–मेष राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से सामान्य लाभ वाला रहेगा। इन जातकों को इस माह हर क्षेत्र में सर्तकता अपेक्षित रहेगी। जो लोग राजनीतिज्ञ हैं उन्हें विरोध का सामना करना पड़ सकता है। सरकारी कर्मचारियों का सामान्य रूप से कार्य चलेगा। अपने जीवन साथी के स्वास्थ्य का ख्याल रखें।

वृष:– वृष राशि के जातकों को इस माह व्यापार तथा व्यवसाय में लाभ की अधिक अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। जितनी मेहनत करेंगे, उससे कम ही लाभ मिलेगा। अनजान लोगों पर भरोसा न करें। सम्पत्ति सम्बन्धित वाद-विवाद होंगे पर इन जातकों को उसमें सफलता मिलेगी। छोटी बड़ी यात्राएं-करनी पड़ेगी। जिनके कोर्ट-कचहरी के मामले हैं वो अभी लटकेगें। दाम्पत्य जीवन में मधुरता बनाए रखें।

मिथुन–मिथुन राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से लाभ प्रद रहेगा। आय की अपेक्षा व्यय की मात्रा कम होगी जिससे अर्थ संचय का लाभ मिलेगा। अपनी चीजें सम्भाल कर रखें, कोई आपका प्रिय ही आपको धोखा दे सकता है। किसी जमीन जायदाद संबंधी विवाद में ये जातक उलझ सकते हैं।

कर्क–कर्क राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से पूर्वार्ध में लाभप्रद तथा उत्तरार्ध में सामान्य रहेगा। किसानवर्ग फिर भी लाभ दायक स्थिति में रहेगा। शत्रुओं से सावधान रहें। इस समय किसी स्कीम में पैसा लगाना अच्छा नहीं है। अपने तथा अपने जीवन साथी के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखें। दाम्पत्य जीवन में मधुरता बनाए रखें।

सिंह–सिंह राशि के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से लाभालाभ की स्थिति लिये रहेगा। घरेलू मामलों में उलझनों के कारण पूरा ध्यान व्यापार-व्यवसाय में नहीं लगा पायेंगे, फिर भी बड़ें लोगों से मुलाकात के चलते कुछ उपलब्धियां मिलेंगी। कुछ जातकों का दिया हुआ उधार पट जायेगा। नौकरी पेशाजातक अपने अधिकारियों को नाराजगी का अवसर न दें। दाम्पत्य जीवन सामान्य रूप से चलेगा। समाज में यश व मान बना रहेगा।

कन्या–कन्या राशि के जातकों को व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि में आंशिक लाभ होगा। कोर्ट-कचहरी में सफलता मिलेगी। दाम्पत्य जीवन एवं साझेदारी में दो तीन बार आपसी विवाद कलह के अवसर आयेंगे, इस समय संयमित रहकर समझदारी से काम निकाल ले। इन जातकों का तथा जीवन साथी का स्वास्थ्य विपरीत रूप से प्रभावित होगा।

तुला–तुला राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह सामान्य लाभ की स्थिति लिये होगा। नौकरी-पेशा जातकों की पदोन्नति हो सकती है। कुछ जातकों का पिछला रूका हुआ पैसा मिलने की उम्मीद है। दाम्पत्य जीवन एवं साझेदारी के लिये यह माह नौकझौंक वाला है। मानसिक परेशानी के समय बुजुर्गों की राय लेने से लाभ होगा। स्वास्थ्य परेशानी युक्त रहेगा।

वृश्चिक–वृश्चिक राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से उत्तरार्ध की अपेक्षा पूर्वार्ध अच्छा नहीं है। पूर्वार्ध में व्यय की अधिकता रहेगी जिससे मानसिक परेशानी संभव हैं। उत्तरार्ध में किसी नई योजना का क्रियान्वयन सम्भावित है। नये व्यक्तियों से मुलाकाल होगी। शत्रु सिर उठाएंगे पर परास्त होंगे। वाहन सबंधी कोई परेशानी आ सकती है। जीवन साथी सबंधी स्वास्थ्य विषयक चिंता बनी रहेगी।

धनु–धनु राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से कुल मिलाकर साधारणलाभ वाला है। आय के साथ साथ व्ययाधिक्य भी होगा। घर-परिवार में कोई आयोजन होगा और मनोरंजन आदि पर भी व्यय हो सकता है। हां कोई नई योजना पर कार्य शुरू किया जा सकता है। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें।

मकर–मकर राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से आशानुकूल फल दायक है। सरकारी कर्मचारी व नौकरी पेशा जातकों का अपने अधिकारियों से ताल मेल बना रहेगा। राजनैतिक क्षेत्रों में रूचि रखने वालों के लिये भी समय अच्छा है। जहां कहीं से अचानक धन प्राप्ति के योग हैं वहीं पर व्यय के अधिक होने का भी खतरा है। सचेत रहें। वाहन सावधानी से चलाएं।

कुंभ–कुंभ राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से लाभ प्रद है। आमोद-प्रमोद मनोरंजन के मौके मिलेंगे। अचानक भी कोई रकम या शुभ सूचना प्राप्त हो सकती है। किन्ही जातकों को राजकीय सम्मान भी मिल सकता है। धार्मिक व सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने के अवसर आयेंगे। वाहन सबंधी सुख मिलेगा। दाम्पत्य जीवन यथा सम्भव सुखी रहेगा।

मीन–मीन राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से लाभालाभ की स्थिति लिये होगा। अकारण वाद-विवाद से दूर रहें। किसी बात को लेकर मानसिक चिंता बनी रहेगी। आलस्य को त्यागकर पुरूषार्थ का सहारा लें। कार्यों में सफलता मिलेगी। वाहन चलाते समय सावधानी बरतें। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा।

–इति शुभम्

आओ इस मन को ही मंदिर बनायें

जन्म-दिवस के आयोजन पर पूज्य गुरूदेव का उद्‌बोधन

आप मंदिर आदि धर्म-स्थान इसलिए बनाते हैं कि उनसे प्रेरणा लेकर अपने को ही मंदिर बनायें। किन्तु अपना मन ही सबसे बड़ी बाधा होता है अपने आप मंदिर बनने में। आप जप में, पूजा में सामायिक में बैठते हैं पर आपका मन कहां-कहां दौड़ता रहता है। उस दौड़ से परेशान होकर आप अभ्यास ही छोड़ देते हैं। तो अभ्यास में गहरे उतरने के लिए मन पर लगाम लगाना जरूरी है। उसके लिए मैं एक अनुभूत साधना-विधि देना चाहता हूं- वह है ऊँ का नाद। मैं पूरे विश्वास और अनुभव के साथ कहता हूं ऊँ नाद के अभ्यास से न केवल मन को लगाम लगेगी, बल्कि जिस दिन वह नाद नाभि से उठना शुरू हो जाएगा, कुंडलिनी जागरण की दिशा में आपके कदम बढ़ जाएंगे- पूज्य आचार्यश्री रूपचन्द्रजी ने ये उद्‌गार अपने जन्म-दिवस पर आयोजित समारोह में प्रकट किये।

आपने कहा- मुझे जन्म-दिवस के आयोजन में केवल इतनी-सी रुचि है कि इस बहाने आपके साथ कुछ धर्म-चर्चा/आत्म-चर्चा कर सकूं। आपको समझना है पंथ, परंपरा, मान्यताएं आपको अपने तक नहीं पहुंचाती हैं। वे आपको अपने से नहीं जोड़ती हैं। बल्कि वे खुद के साथ जोड़ती हैं। मैं चाहता हूं आप मेरे से नहीं, अपने से जुड़ें। इसके लिए-

आओ इस मन को ही मंदिर बनायें
नाभि से ऊँ का नाद उठाएं
करूणा-सेवा का दीप जलायें
भीतर विराजे प्रभु को रिझाएं।

इस अभ्यास के आरंम्भ से ही दौड़ते हुए मन पर लगाम लग जाएगी। नाद जैसे-जैसे गहराई में से निकलेगा, आपके सोई हुई दैविक शक्तियां जागृत होती चली जाएंगी।

पूज्यवर ने इस अवसर पर उपस्थित जन-समुदाय को ऊँ नाद का अभ्यास भी करवाया। पन्द्रह मिनट के इस अभ्यास के पश्चात् लोगों के चेहरों पर एक अलग चमक थी, मन पर लगाम लगने का एक नया अनुभव था। पूज्यवर ने ऊँ मंत्र का महत्व विस्तार से बताया तथा ध्यान में गहरे उतरने का एक आसान-सा प्रयोग दिया। आपने यह भी बताया कि इस अभ्यास के बाद आप सगुण अथवा निर्गुण समाधि का अनुभव कर सकते हैं।

कार्यक्रम का आरंम्भ साध्वी कनकलता जी, साध्वी वसुमतीजी तथा साध्वी पद्‌मश्री जी के मंगल-गीत से हुआ। सरलमना साध्वी मंजुश्री जी, साध्वी चांद कुमारी जी, साध्वी दीपांजी तथा साध्वी सुभद्रा जी (बाई महाराज) ने मौन अभ्यर्थना की। सौरभ मुनि ने मधुर गीत द्वारा अपने भावों को प्रकट किया। संगीतकार श्री बलविन्दर भारती ने भी सरस गुरू-भक्ति का गीत गया।

पूज्या संघ-प्रवर्तिनी साध्वीश्री मंजुलाश्री जी ने अपने प्रेरणादायी प्रवचन में पूज्य गुरूदेव के प्रभावशाली प्रवचनों से देश-विदेश में हो रही धर्म-प्रभावना को रेखांकित किया। समाज-सेवी श्रीमती मंजुबाई जैन ने गुरू-आरती प्रस्तुत की। साध्वी समताश्री जी ने अपने संयोजन में गुरूकुल के बच्चों की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। श्री साधुरामजी विमला बाई जैन के मधुर भंडारे के साथ समारोह संपन्न हुआ।

दिनांक 2 अक्टूबर का पूज्य आचार्यश्री का विशेष प्रवचन धर्म-प्रेमी श्री पवनजी रीटा जैन के नव-निर्मित आवास पर ऋषभ-विहार में रहा। आपने कहा- भगवान महावीर के पश्चात् महात्मा गांधी ने अहिंसा के सिद्धान्त को जन-जीवन के साथ प्रभावी ढ़ंग से जोड़ा। यही कारण है पूरे विश्व में जहां भी अहिंसा की चर्चा होती है, महात्मा गांधी का नाम सबकी जुबान पर आता है। जैन धर्म ने निस्संदेह अहिंसा को प्रमुखता दी। किन्तु जैन परंपरा अहिंसा के नकारात्मक स्वरूप को स्वीकार करते हुए बाहरी जड़-क्रियाओं में उलझ कर रह गई। परिणामतः वह अहिंसा का सकारात्मक तेजस्वी स्वरूप मानव-समाज के समक्ष नहीं रख पाई। आपने दैनिक जीवन में अहिंसा के रचनात्मक पक्ष-प्रेम, क्षमा और मैत्री को अपनाने की प्रेरणा दी। पूज्या प्रवर्तनी साध्वीश्री मंजुलाश्री जी तथा सौरभ मुनि ने भजन-संगीत के माध्यम से जन-समुदाय को आनंदित किया।

इस प्रसंग पर जैन साहब का विशाल परिवार तथा मित्र-जन सैंकड़ों की संख्या में उपस्थित थे।

प्रार्थना धर्म का निचोड़ है। प्रार्थना याचना नहीं है, यह तो आत्मा की पुकार है प्रार्थना दैनिक दुर्बलताओं की स्वीकृति है, यह हृदय के भीतर चलने वाले अनुसंधानों का नाम है।

-महात्मा गांधी